गुजरा हुआ जमाना

हिन्दी ADDA

जयशंकर

गुजरा हुआ जमाना

छाया ने उसके घर के दरवाजे पर दस्तकें भी नहीं दी। वह आँगन से ही लौटने लगी। आँगन में मार्च की शाम का आखिरी उजाला भी सिमट रहा था। तुलसी के चौरे के पास लेटी हुई भूरी बिल्ली की नींद छाया की पदचापों से टूटी होगी। वह दुबारा दरवाजे की तरफ मुड़ी। उसने कुछ कदम भी बढ़ाए। फिर वह दूसरी बार मुड़ी और अपने घर की दिशा में बढ़ने लगी। आसपास कुछ पेड़ थे और उनसे झरता उजाला, उनसे झरती पत्तियाँ, फूल और डालें। आशा हाउस का खंडहर। गिर चुकी दीवारों की रखवाली करता चौकीदार। विकास के घर की रसोई की खिड़की भी बंद थी। उसकी माँ दफ्तर में रही

होगी। इन दिनों विकास के पुराने मकान के पुराने पेड़ पर रह रहीं गिलहरियों ने उसके घर में कुहराम मचा रखा था। किसी भी पुराने मकान के पड़ोस में खड़े पेड़ पर रहतीं गिलहरियों का इस तरह आक्रामक हो जाना। गिलहरियों की हरकतों के बारे में वह फोन पर विस्तार से बताया था। वह सुनती रही। उसकी छोटी-छोटी, दूर से अर्थहीन नजर आती पर सचमुच में मतलब से भरी उसकी दिलचस्प और मामूली बातों को। शुरुआत में उसने नहीं जाना था कि जिंदगी छोटी-छोटी मामूली और अर्थहीन जान पड़ती बातों से भी खड़ी होती रहती है। वे दोनों गुरुद्वारे के पास की गली के उस मोड़ पर बैठे रहते जहाँ लंगर की तैयारियाँ होती रहती थीं। जहाँ से चूल्हे, देगचियाँ, लकड़ियाँ और टीन की शेड नजर आती रहती थी।

'तुम बोर हो रही होगी?'

'नहीं।'

'तुम्हारा ध्यान कहीं और है।'

'मुझे आज जल्दी जाना है।'

'क्यों?'

'मेरे बड़े भाई का यहीं ट्रांसफर हो गया है... उनसे डर लगता है।'

'कैसा डर?'

'मैं इस तरह घर से बाहर जो रहती हूँ... उनको यह सब ठीक नहीं लगेगा।'

'पर घर में सब जानते हैं कि तुम फ्रेंच की क्लास के लिए निकलती हो...।'

'यह सब ज्यादा दिन तक नहीं चलेगा...।'

छाया को फ्रेंच सिखा रही बुढ़िया सचमुच दयालु थी। छाया के बहानों और बीमारियों के बारे में ध्यान से सुनती थी। वह कभी-कभी उस बुढ़िया के लिए ब्राउन ब्रेड, केक या रजनीगंधा के फूल खरीदा करती थी। कोई अच्छा दिन होता तब विकास भी उस अध्यापिका के घर आ जाता और वे तीनों जमाने भर की गपशप में शामिल हो जाते, नीबू की चाय पीते और हिंदुस्तानी संगीत के वे रिकार्ड्स सुनते जिन्हें बुढ़िया ने अपनी जवानी के दिनों में खरीदा था और बुढ़ापे के दिनों में सुन रही थी।

ये दोनों पिछले तीन बरसों से एक-दूसरे से मिलते रहे थे। इनकी पहचान और मुलाकात मकर संक्रांति की एक दुपहर में छावनी के बस स्टाप पर हुई थी। उसी बस स्टाप पर इस वक्त खड़ी हुई छाया को लग रहा है कि उसे इस तरह उसके दरवाजे से लौटना नहीं था। वह उससे आखिरी बार बात कर सकती थीं। क्या आखिरी निर्णय जैसी कोई बात होती भी है? आदमी कितना कुछ सोचता है, उसके अंदर क्या-क्या नहीं चलता है, कितनी-कितनी भूलों और कितने-कितने भटकावों के बाद कोई बात, कोई संकल्प, कोई फैसला उसके भीतर जनमता है, लेकिन वह कितनी देर ठहरता है।

कितना कमजोर साबित होता है; पर प्रेम के दिनों में यह क्या और क्यों होता है कि कोई हमारे साथ लगातार संवाद या विवाद कर रहा होता है। अपने भीतर हमेशा किसी की उपस्थिति को महसूस किए जाना। किसी का इतना ज्यादा ख्याल। इतनी ज्यादा परवाह। छाया ने ऐसी व्याकुलता, ऐसी अधीरता को अपनी तीस बरस की उम्र में पहली बार जाना था।

ऐसा कितना कुछ नया, गहरा और अर्थपूर्ण रहा है, जिनको छाया ने अपने प्रेम के इन तीन बरसों में ही जाना था। वह घर से इस तरह बाहर नहीं निकलती, विकास के साथ शहर के अलग-अलग इलाकों में इतना वक्त न गुजारती, उन दोनों के बीच इतनी बातचीत, इतनी बहसें न होती तो शायद वह छाया होती ही नहीं, जो इस वक्त, विकास के घर का दरवाजा खटखटाए बिना, अपने दरवाजे की तरफ बढ़ रही थी।

यह क्रिसमस इव की बात है। छाया और विकास सदर बाजार की लेन की बेकरी से केक खरीद रहे थे। विकास ने अपना स्कूटर वेस्टर्न बुक डिपो के सामने रखा था। जब छाया स्कूटर की पिछली सीट पर बैठने लगी तभी उसका बड़ा भाई किताब की दुकान से निकला था। इन सबको क्षण भर भी नहीं लगा। छाया ने घर लौटने पर जाना कि वह क्षण कितना ज्यादा फैल गया है। किस तरह फैल गया है। उसे कटघरे में खड़ा होना पड़ा। माँ, पिता और भाई के सवालों को सुनना-सहना पड़ा। उसने सब कुछ और सच-सच बता दिया। यह बताना भी नहीं भूली कि वे लोग विकास से कहाँ और कब मिल सकते हैं। छाया के लिए वह शाम कुछ-कुछ कठिन और मनहूस बनी रही। उसने सुबह-सुबह ही विकास से मिलने और पिछली शाम की बातों को बताने का मन बनाया और ऑटो से ही उसके घर की तरफ निकल पड़ी।

उस वक्त घर में विकास की माँ भी थी। उसने घटना के कुछ-कुछ डिटेल्स विकास को बता ही दिए। अपनी माँ से बात करने और इस संकट से छुटकारा पाने के लिए पहल करने को कहा। विकास सुनता रहा। उसे दिलासा देता रहा। कुछ दिनों तक रुकने और

बात के उतनी ज्यादा बिगड़ी न होने का भरोसा दिलाता रहा। छाया के घर से निकलने के कुछ देर बाद ही उसका भाई विकास के घर पहुँच गया। वह छाया का पीछा ही कर रहा था। वह भी विकास के घर में, पंद्रह-बीस मिनट ही रुका। उसने घर के आँगन में, तुलसी के चौरे के पास खड़े रहकर ही बात की। विकास सुनता ही रहा और बीच-बीच में इसकी भनक लेता रहा कि कहीं उसकी माँ सुन तो नहीं रही है।

उसी शाम को अंत की शुरुआत हुई। उनका क्रिसमस फीका रहा। वे उस बूढ़ी अध्यापिका के घर नहीं गए। काल भैरव के मंदिर के चबूतरे पर छाया उसे सुनाती समझाती रही। वह बुरी तरह डर गया था। छाया का बड़ा भाई उसे डरा चुका था। पुलिस और गुंडों तक की बात कर चुका था। शायद विकास को सबसे ज्यादा डर अपनी माँ तक इस मामले के पहुँचने का था। माँ क्या सोचेगी? वह हमेशा से चाहती रही थी कि विकास के जीवन में कोई अर्थ हो, भले ही छोटा सा अर्थ, लेकिन उसका अपना कोई स्वप्न, अपना कोई भविष्य। इसकी खातिर ही माँ उसके लिए लाइब्रेरी से किताबें लाती रही थी, उसके लिए अखबार और पत्रिकाएँ खरीदती रही थी। विकास को लग रहा था कि इन सब बातों से माँ नाराज उतना नहीं होगी जितना निराशा और हताश। यह बात थी जिसे वह छाया को समझा नहीं पा रहा था। इस बात को समझाने के लिए छाया को उन कितने ही कठिन बरसों को समझाना था जिन्हें माँ-बेटे ने साथ-साथ गुजारे थे। जो उनके अभावग्रस्त और जटिल दिन थे।

'मैं आंटी से बात करूँगी।'

'उनको बुरा लगेगा।'

'किस बात का?'

'मैं सीधे उनसे नहीं कह रहा हूँ।'

'फिर तुम ही बात करो।'

'हमें थोड़ा सा रुकना होगा।'

'और तब तक मेरे घर के लोग कोई ऐसा-वैसा कदम नहीं उठा लेंगे?'

'यह नहीं होगा।'

'तुम डरपोक ही नहीं, बेवकूफ भी हो।'

वह मुस्कराने लगा था। छाया को और गुस्सा आ गया। वह उसकी बातों को गंभीरता से नहीं ले रहा था। कहाँ तो उसकी जान अटकी थी, वह छिप-छिपकर घर से बाहर निकल रही थी, बड़ी मुश्किलों से उससे मिल रही थी और विकास था कि संकट को गंभीरता से नहीं ले रहा था। यहीं पहली बार छाया के मन में खटका जागा था। यहीं पहली बार उसके मन में विकास के लिए, उसके प्रेम के लिए संशय जागा था। उस दुपहर में, बस से अपने घर लौटते हुए छाया को लगा कि हर कोई ऐसा नहीं है जो अपने प्रेम के लिए कष्ट और जोखिम उठाना ही चाहे। जीवन की तरह, लोग अपने प्रेम में भी तकलीफों से बचना चाहते रहे हैं। ऐसा विकास के साथ भी हो सकता है। उस दुपहर में अपने घर के सामने के कुएँ के पास बैठे हुए, छाया देर तक अपने बारे में, अपने जीवन और भविष्य को लेकर सोचती रही थी। शायद उस दुपहर में ही छाया और विकास के प्रेम के अंत के बीज बोए जाने लगे थे। छाया के लिए प्रेम का अर्थ और विस्तार कुछ और होने लगा था और विकास के लिए कुछ और। शायद विकास को जीवन में प्रेम की उतनी नहीं, जितनी अर्थ की जरूरत महसूस होती रही थी।

छाया के मकान के सामने के एक कोने में बरसों पुराना कुआँ था और उतना ही पुराना चीकू का पेड़। वह जब कभी अपने मन को उदास और बेतरतीब पाती, तब वहीं आकर बैठ जाती। कुएँ के पानी से अपना चेहरा साफ करती और पेड़ के नीचे की घास पर बैठ जाती। जब तक दादी जीवित रही, तब तक ऐसे वक्त में वह छाया के पास आती रही थी। अब दादी नहीं है। बड़ी बहन का विवाह हो चुका है। बड़ा भाई अपनी तरह का आदमी है और एकदम जड़ और व्यावहारिक। बात से बात रखने वाला। काम से काम रखने वाला। घर और खानदान की इज्जत का तमगा लटकाए हुए। जिसका मन अपनी बहनों का सिर झुका हुआ देखना चाहता रहा है। वह अपनी बहनों को चुप देखना पसंद करता है और रसोईघर को ही उनकी उचित जगह समझता आया है।

यह सब छाया ने विकास को बताया था। यह भी कि वह अपने भाई को हमेशा से ही चुनौती देने का मन बनाती रही है। वह अपने जीवन को खुद जीना चाहती है। अपनी शर्तें पर जीना चाहती है। अपने ढंग से जीना चाहती है।

छाया की बात दूसरी थी। कम से कम अपने परिवार के बीच में वह हमेशा से बहस करती रही थी। अपने सोचने-समझने को रखती रही थी। उसके माता-पिता तो उतना नहीं, पर उसके दादा-दादी और नाना-नानी उसकी इस बात को समझते रहे थे, सराहते रहे थे। अपनी बड़ी बहन से भी छाया का अच्छा और गहरा संवाद बना रहा। स्कूल और कॉलेजों में भी छाया बढ़-चढ़कर बोलती रही, इस तरह जोखिम उठाती रही, असहमत होती रही। कॉलेज के मनचले लड़के तक उससे सँभलकर बात करते थे

और डरपोक लड़कियाँ जब-तब उसकी शरण में आती रही थीं। इस तरह वह विकास से बिल्कुल अलग ढंग से पली-बढ़ी थी। छाया के लिए बड़े होते जाने का मतलब ही चुनौतियों को समझना, झेलना और उनसे बाहर आना था। वह अपनी हर तकलीफ और मुसीबत से डरना नहीं, लड़ना चाहती रही थी। अब भी वह यही चाह रही थी कि विकास उसके घर आए, उसके माता-पिता से बात करे और उनकी मित्रता का सिलसिला बना रहे। वे एक-दूसरे से मिलते रहें।

विकास इसके लिए साहस नहीं जुटा पा रहा था। वह डर रहा था। पर वह यही नहीं जान रहा था कि वह किससे डर रहा है, क्यों डर रहा है। छाया उससे सवाल करती और वह खामोश बना रहता। छाया ने यहाँ तक कहा था कि वह सिर्फ सामने रहे और वह खुद अपने माँ-बाप से बात करेगी और उसकी माँ से भी, लेकिन विकास को यह भी ठीक-ठीक नहीं जान पड़ रहा था। शहर के पुराने इलाके के काल भैरव मंदिर के पास की झाड़ियों के करीब बैठे हुए छाया ने उससे क्या-क्या नहीं कहा था, किस-किस बात पर अपने को व्यक्त नहीं किया था? सर्दियों का सूरज ढलने लगता था पर उनकी बातचीत आधी-अधूरी ही रह जाती थी। विकास उस वक्त भी डरा-डरा रहता। पत्तों की सरसहाट तक से चौंक जाता। किसी के पदचापों की आहट सुनता रहता। करीब कोई कुएँ में बाल्टी डालता या मंदिर की घंटी बजाता और विकास उठने का मन बनाता। इधर-उधर ताकने लगता था।

शायद इस जगह पर, शायद इसी मोड़ पर छाया ने महसूस किया होगा कि जो आदमी अपनी आत्मीय चीज को भी बचाना नहीं चाह रहा है, उसको बचाने का जोखिम नहीं उठा पा रहा है, क्या उसके साथ दूर तक जाना, दूर तक जाने की सोचना कोई ठीक बात होगी? आखिर अपने लिए, अपने सुख और भविष्य के लिए तो हर किसी को कोशिश करनी ही चाहिए। इस तरह भय के साथ, इतनी-इतनी बेबुनियाद आशंकाओं के साथ कैसे कोई ठीकठाक जीवन जिया जा सकता है। यह सब और ऐसा सब छाया सोचती रही थी। अपने पुराने मकान के पुराने बाग में चहलकदमी करते हुए सोचती रही थी। ये छाया के सोचने-समझने के दिन रहे। सहन करने और संताप के साथ रहने के दिन भी।

सर्दियों क इन दिनों में, जनवरी की इन शामों में ही उसने यह भी जाना कि यह आदमी का भ्रम ही होता है कि वह किसी के बिना जी नहीं सकता है या कोई उसके बिना रह नहीं सकता है। हर कोई हर परिस्थिति में जीने का साहस जुटा लेता है। बहुत दूर तक कोई भी भावना, कोई भी पीड़ा साथ नहीं चलती है और देर-सबेर हम सब अपनी रुटीन से बंधने लगते हैं। अपने आइनों के सामने खड़े होते हैं, अपने बाल सँवारते हैं, अपनी

साड़ी की सलवटों को ठीक करने लगते हैं और यह सब करते हुए हम धीरे-धीरे भूलने लगते हैं कि अभी कुछ दिन ही हुए जब हम किसी से मिलने के लिए बेताब बने रहते थे, देर-देर तक बेताब बने रहते थे, देर-देर तक किसी से मिलने की प्रतीक्षा किया करते थे। बारिश में भीगते हुए बस स्टॉप पर खड़े रहते थे। कुछ ही दिनों पहले की हमारी शामों में रजनीगंधा की महक शामिल हुआ करती थी, कॉफी के प्यालों से उठती भाप और ब्रेड और ऑमलेट की गंध भी।

इस वक्त भी अपने आँगन के कुएँ के आसपास चहलकदमी करते हुए छाया के मन में यही आ रहा है कि अंततः आदमी हर परिस्थिति में जीना, हर परिस्थिति को स्वीकार करना, हर मनःस्थिति से बाहर आना सीख ही लेता है। दूर तक और देर तक कोई भी परिस्थिति या कोई भी मनःस्थिति यथावत नहीं बनी रह सकती है। मौसम बदलते जाते हैं। आदमी बदलता जाता है। दुनिया और उसके दुख-सुख बदलते रहते हैं और इस तरह जीना भी जारी रहता है; मरना भी शुरू रहता है। शायद अंत होता ही नहीं है। शायद अंत किसी का कोई ख्याल है या कोई ख्वाब।

छाया बस से अपने घर लौट रही थी। बस को पुराने शहर से शहर के नए इलाके में जाने तक आधा घंटा लगता था। इस बीच एक छोटा तालाब आता। उसके किनारे खड़ा शिव का प्राचीन मंदिर, बुनकरों की बस्ती और वह चौराहा जहाँ बैंड पार्टी के लोग होते, उनके साजो-सामान, उनकी पोशाकें और उनके साइनबोर्ड टँगे रहते। छाया इन सबको देखती चली आई थी; पर आज मन में कुछ और था, निगाहों में कुछ और। विकास के साथ बीते हुए पिछले कुछ दिन। बारिश के दिनों की कुछ शामें। गर्मियों की कुछ दुपहरें। सर्दियों का कोई वक्त जब वे दोनों कहीं बाहर नहीं, किसी रेस्तराँ में बैठने के लिए विवश हो जाते थे और दोनों के भीतर यह डर बसा रहता था कि उन्हें कोई साथ-साथ देख लेगा। वे दोनों शहर की सरहद के कुछ पुराने इलाकों में मिला करते थे जहाँ काल भैरव का मंदिर था, पुराना गुरुद्वारा था और मल्हारी माता का मंदिर जिसे कभी होल्कर परिवार के किसी राजा ने बनवाया था।

छाया का घर करीब आ रहा था। वह बस से उतरने के लिए तैयार होने लगी थी। वह उन दिनों के लिए भी तैयार होना शुरू कर रही थी जिन्हें अब उसे बिताना था, सहना था। इन दिनों में विकास को शामिल नहीं होना था। ये छाया के अकेलेपन के दिन होने थे। ये छाया के अवसाद के दिन होने थे।

मार्च की इस शाम में जब छाया अपने घर की तरफ पैदल-पैदल बढ़ रही थी तब तक यह शहर इतना आधुनिक, इतना चमकीला, इतना समृद्ध नहीं हुआ था जितना वह

अभी नजर आता है। तब तक मोबाइल, माल, बिग बाजार, मल्टीप्लेक्स और किस्म-किस्म के विज्ञापनों के इतने ज्यादा आक्रमण और आतंक को इस शहर ने झेला नहीं था। मार्च की वह शाम, छाया की निराशाओं और हताशा की वह शाम, एक गुजरे हुए वक्त की शाम थी, एक ऐसी पुरानी, पीली और पराजित शाम, जिसे फिर कभी नहीं लौटना था। वह गुजरे हुए जमाने की, गुजर चुकी शाम थी।

https://www.hindiadda.com/gujara-hua-jamana/